13

मेरी प्रारंभिक कृतियाँ और पत्नी का साहचर्य एवं शिक्षण

मैं अपने विवाह के पूर्व अपनी भावी पत्नी को इलाहाबाद की चमेली देवी धर्मशाला में देखने की चर्चा पहले कर चुका हूँ। इलाहाबाद की उसी धर्मशाला के पास से अपनी पत्नी के साथ गुजरते समय मैनें 1973 में एक शेर में इसकी चर्चा इस प्रकार की है —

उम्र की राह जो तै कर आये, आओ उसीसे लौट चलें अब
देखो, यहीं तुम हमको मिली थी, यह है जवानी, यह है लड़कपन

मेरे विवाह के पूर्व, यह जानने के बाद भी कि मेरी सगाई हो चुकी है, बनारस के एक सज्जन अपनी पुत्री से मेरा विवाह रचाना चाहते थे और इसके लिए मेरी बड़ी खातिरदारी भी की जाती थी। मेरे मन में और भी कई आकर्षण थे परंतु मेरी भावी पत्नी के रूप ने मुझ पर जादू-सा कर दिया था। उसके उस रूप की चर्चा मैं प्रथम दर्शन नामक कविता में तो कर ही चुका हूँ, **चाँदनी** के गीतों में भी उसकी झलक हैं। **नीली साड़ी पहने तुम चाँदनी रात-सी** नामक गीत तो स्पष्टतः चाँदनी से अधिक अपनी पत्नी के प्रति है ही। **चाँदनी** के अन्य कितने ही गीतों में भी, जिन्हें मैं गाहस्थ्य प्रेम के नाम से संयोजित अपनी पुस्तक **प्रेम-कालिंदी** में अलग से दिखा चुका हूँ, मेरी पत्नी की किशोरावस्था की वह छवि अनेक रूपों में विविध प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त की गयी है। **चाँदनी** के गीतों में जहाँ मेरे भावनात्मक मुक्त प्रेम की पूरी कहानी मिलन से विरह तक चित्रित है, वहीं गार्हस्थ्य प्रेम की भी पूरी चित्रावली चाँदनी के माध्यम से अंकित है। **चाँदनी** मेरी उस अवस्था की रचना है जिस अवस्था में प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति कवि बन जाता है। फिर जो जन्म से कवि हो, उसकी कविता का क्या कहना ! मैंने 1941 में **माँझी से** शीर्षक से रवींद्रनाथ के प्रति जो रचना की थी (**कविता** के दूसरे संस्करण में प्रकाशित) उसमें एक प्रकार से महाकवि को चुनौती देने का अपराध कर चुका था। बाद

में उस गवोर्क्ति के लिए **कस्तूरी कुंडल बसे** नामक अपनी पुस्तक में 1986 में मैंने उनसे क्षमा-याचना भी कर ली है परंतु प्रायः 1000 गेय गीत, जिनमें करीब 800 भक्तिगीत है, पूरे कर लेने के बाद, सन् 2000 में मैंने 17 वर्ष की अल्पावस्था में दिये हुंए अपने वचन को स्मरण करते हुए पुनः एक बार यह लिख दिया है–

हे रवींद्रनाथ!
मैं भी चल सकूँगा अब तुम्हारे साथ-साथ
तुमने ज्यों गरल-दाह झेला
बदले में सुधा-घट उड़ेला
मैं भी तपता रहा अकेला
लिखते क्षण काँपे नहीं हाथ
आयेगी मेरी भी बारी
जग को लगेगी कभी प्यारी
काँटों की झेल व्यथा भारी
मैंने जो माला दी गाँथ
गाता प्रेम-भक्ति के स्वरों में
पाऊँगा प्रतिष्ठा अमरों में
गूँजेगी तुम-सी ही घरों में
स्वरधारा यह भी पुण्यपाथ
हे रवींद्रनाथ!
मैं भी चल सकूँगा अब तुम्हारे साथ-साथ

मैं अपनी किशोरावस्था में रवींद्रनाथ के प्रेमगीतों से बहुत अधिक प्रभावित था और यह समझते हुए कि भाव-सबलता, और गहराई में मैं रवींद्रनाथ को नहीं छू सकता परंतु प्रतीक-योजना और कला की पच्चीकारी द्वारा मैं अपनी प्रेम-भावना को चित्रित करके अपने लिए उनसे भिन्न कोई मार्ग निकाल सकता हूँ, **चाँदनी** के एक-एक गीत में मैंने दो-दो अर्थ पिरोये हैं। पहला अर्थ तो चाँदनी के चित्रण के **रूप** में है और दूसरा अपने प्रेम-प्रसंग से संदर्भित गार्हस्थ्य प्रेम के **रूप** में। इसके साथ ही मेरी भावनात्मक मुक्त प्रेम की गाथा का भी उसमें आद्यंत चित्रण देखा जा

सकता है जिसका सीधा और इकहरा वर्णन मेरे उस समय के सॉनेटों में है। मैंने मुक्त प्रेम तथा गार्हस्थ्य प्रेम की दोनों धाराओं के चित्रण करनेवाले सॉनेट अपनी पुस्तकें, **प्रेम-वीणा** तथा **प्रेम-कालिंदी** में अलग कर दिये हैं। **चाँदनी** के प्रत्येक गीत में मैंने चाँदनी और प्रेम की विभिन्न स्थितियों के आदि से अंत तक के क्रमिक सोपान दिखाये हैं। अर्थात् एक ही गीत में जहाँ चाँदनी का चित्रण रात के पहले पहर का, आधी रात का और भोर का है, वहीं प्रेम के मिलन, साहचर्य तथा विदाई के तीनो चरणों का भी चित्रण है। सॉनेट के बाद के, प्रथम मुक्त प्रेम के प्रसंग के शेष भाग का चित्रण **ऊसर के फूल** की दो लंबी रचनाओं में स्पष्ट देखा जा सकता है जिनमें मैंने अंग्रेजी के ओड नामक छंद की शैली का हिंदी में पहली बार प्रयोग किया है। मैं नहीं जानता कि ओड के काव्य-रूप का प्रयोग हिंदी में किसी और कवि ने आज तक भी किया है या नहीं। कम से कम, मेरे देखने में तो नहीं आया है।

उस काल के अन्य गीतों में भी मेरी प्रेम-भावना कलात्मकता के साथ व्यक्त हुई है। उन गीतों में भी मुक्त प्रेम तथा गार्हस्थ्य-प्रेम, दोनों की झाँकिया हैं। 1946 में मेरी पत्नी प्रतापगढ़ में बहुत अस्वस्थ हो गयी थी। उसे शय्या से नीचे उतारने तक की तैयारी हो गयी थी। मैं उस समय अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में भाग लेने कराँची गया हुआ था। मेरे लौटने तक वह थोड़ी स्वस्थ तो हो चुकी थी पर अत्यंत दुर्बल थी। उसके उस **रूप** का वर्णन मैंने **अश्रुकण झड़ते रहे** नामक रचना में इस प्रकार किया है :—

अश्रु-कण झड़ते रहे, प्रिय! तड़ित्—सी हँसती रही तुम
आज उड़ने को विकल हैं प्राण—खग दृग—खिड़कियों से
स्वर्ण-सी काया तुम्हारी गल गयी कटु झिड़कियों में
यह उदास तटस्थ मुख की दृष्टि मैं पहिचानता हूँ
वक्ष यह फूला, रुँधा, घुटता रहा है सिसकियों से
ज्योति-लांछित शून्य कोने में घुली, उमड़ी, बही तुम
स्वार्थ को दूँ दोष मैं! युग से पुरुष की यह कहानी
कब न जाने बँध गये थे, साथ पत्थर और पानी !

रागिनी मेरी ! प्रणय-मकरंद-धौत सुवर्ण–लतिके !
मान मैं सौ बार भूला, रूठ तुम सौ बार मानी
दैन्य मन का एक पल भी देख थी सकती नहीं तुम
कब भला तुमने क्षितिज पर चाँदनी का देश देखा !
कब बिठाकर अंक में सजते मुझे निज केश देखा !
मिलन की मधुरात भी रोते-बिलखते ही बितायी
मिट गया असमय, हृदय ने जो पुलक-उन्मेष देखा
मानिनी ! सबकुछ सहन करने लगी थी आप ही तुम
शुष्क, श्वेत कपोल हिम-से, रुक्ष अलकों में गड़े-से
मलिन दृग-तारक, गगन से ज्योतिहीन ढुलक पड़े-से
क्षीण, गौर कलाइयों में रोक रक्खी चूड़ियाँ दो
चित्र निष्प्रभ, अंग खो लावण्य, शय्या में जड़े-से
देखता हूँ मैं चकित-सा, रूप की प्रतिमा वही तुम!
आज मेरी भूल सारी भूल जाना चाहती हो!
स्नेहमय पा स्पर्श सिर पर, फूल जाना चाहती हो!
पर अतीत मिटा निमिष में ! सरल है न भविष्य इतना
क्षमामयि! दोषी पगों की धूल पाना चाहती हो!
यह नहीं पाथेय, जाना चाहती यदि बेकही तुम
अश्रु-कण झड़ते रहे, प्रिय ! तड़ित्-सी हँसती रही तुम

मैं अपनी पत्नी के **रूप** की और अपनी भावुकता की चर्चा तो कर चुका हूँ परंतु मेरे विवाह के बाद उसके शिक्षण का प्रसंग भी यहाँ बताना आवश्यक है जो मेरे लिए पाठकों की प्रशंसा न भी दिला सके, मुझे तो आत्मतोष देता ही रहा है। मेरी पत्नी अपनी समृद्ध विधवा माता की सब से छोटी संतान होने के कारण बड़े लाड़-प्यार से पाली गयी थी। उसकी शैक्षणिक गति को आँकनेवाला कोई नहीं था। फलतः वह अंग्रेजी में तो ABC के आगे ही नहीं बढ़ सकी थी, हिंदी में भी मात्र थोड़ा बहुत लिख-पढ़ सकने के अतिरिक्त विशेष योग्यता अर्जित नहीं कर सकी थी। 1938–40 के वर्षों में मारवाड़ी घरों में यों भी कन्या की पढ़ाई-लिखाई, केवल रामायण-महाभारत तक सीमित रहती थी। हाँ, कढ़ाई, सिलाई

और घर के काम-काज में उन्हें अवश्य निपुण कर दिया जाता था। फिर भी मेरी सास ने हिंदी सिखाने और संगीत की शिक्षा देने को मेरी पत्नी के लिए निरंतर शिक्षक रक्खे थे। वे शिक्षक साहित्य और संगीत की विशेष जानकारी न रखने के कारण मेरी होनेवाली पत्नी को, सिवा प्रारंभिक ज्ञान देने के, विशेष कुछ नहीं सिखा सके थे। 1942 की गर्मियों की छुट्टियों में मैं अपने परिवार के साथ अपने मूलस्थान राजस्थान के मंडावा गाँव में अपनी पत्नी के साथ दो तीन महीने बिता सका था। द्वितीय महायुद्ध के कारण मेरा कुछ परिवार मंडावा के अपने भवन में रहने को राजस्थान चला गया था। वहाँ, जब मैंने पाया कि वह हिंदी साहित्य में बिल्कुल कोरी है तो मैं स्वयं रात के समय उसे पढ़ाने लगा क्योंकि दिन के समय तो संयुक्त परिवार में पत्नी का दर्शन भी होना कठिन होता है। मैंने उसे **हिंदी साहित्य सम्मेलन** की प्रथमा परीक्षा का कोर्स पढ़ाना प्रारंभ किया और दो महीने की पढ़ाई के बाद जब वह प्रतापगढ़ अपने मायके में आ गयी तो बनारस लाकर उससे प्रथमा की परीक्षा दिलवा दी जिसमें वह पास भी हो गयी। मैंने गाँधीजी की जीवनी में पढ़ा था कि उन्होंने कस्तूरबा को विवाह के बाद स्वयं आगे पढ़ाने का उद्योग किया था जिसमें वे असफल हो गये थे। महात्माजी की विनम्रतावश की गयी असफलता की स्वीकृति के बाद पत्नी को स्वयं आगे पढ़ाकर प्रथमा पास कराने के लिए मैं मन ही मन अपने को विशेष प्रशंसा का पात्र समझने लगा।

पत्नी-शिक्षा का दूसरा प्रकरण अमेरिका में प्रारंभ हुआ जहाँ मैंने उसे अमेरिका के हिसाब से अंग्रेजी का ज्ञान देने का प्रयास किया। वहाँ दिन भर हम दोनों पति–पत्नी साथ ही रहते थे। न कोई रोकने-टोकनेवाला, न किसीसे शर्माने की आवश्यकता। इस लिए इस कार्य में भी मुझे पूर्ण सफलता मिली और आज मेरी पत्नी अमेरिका की अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाएं पढ़ लेती है और अंग्रेजी में होनेवाले टी. वी. के संवादों का तात्पर्य समझ लेती हैं। यद्यपि बाद में अमेरिका में एक अमेरिकन किशोरी मेरी पत्नी को अंग्रेजी का उच्चारण तथा अंग्रेजी में वार्तालाप सिखाने को वर्षों आती रही पर उस शिक्षा का आधार तो मैंने कई वर्षों में तैयार कर ही दिया था। यों अमरीका में घर की सफाई करनेवाली परिचारिकाओं और समय–समय पर आगत अतिथियों से अंग्रेजी में बोलना पड़ता है इस लिए थोड़ा-बहुत बोल-चाल की भाषा का ज्ञान तो सभी नवागंतुकों को हो ही जाता है परंतु मैंने तो अपनी पत्नी को चार्ल्स डिकेंस के कई उपन्यास भी पढ़ा दिये जिससे उसकी भाषा भी समृद्ध हो गयी।

जहाँ तक हिंदी की शिक्षा का ज्ञान है, प्रारंभिक भूमिका तैयार होने के बाद पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से मेरी पत्नी ने हिंदी की इतनी योग्यता हासिल कर ली है कि मेरी संपूर्ण ग्रंथावलियाँ तथा मेरे अन्य काव्य-ग्रंथों को पूरी तरह पढ़ ही नहीं गयी है, उनके प्रकाशन में भी अंतिम प्रूफ के संशोधन उसीके किये हुए हैं तथा उनमें भाषा और व्याकरण की भी कितनी ही भूलें उसने निकाली हैं जो स्वयं मेरे ध्यान में भी नहीं आयी थीं।

यह मेरी आत्मकथा नहीं है। ये मेरे बीते जीवन के खंडचित्र हैं जो स्मृति के दर्पण में झलमला जाते है। मैं उन्ही खंड-चित्रों को इन पृष्ठों में उतारता गया हूँ। जिस प्रकार स्मृति में कौंधनेवाली घटनाओं में क्रमवद्धता नहीं होती, उसी प्रकार इन चित्रों में भी पूरी क्रमवद्धता की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। कितने ही स्थानों पर पुनरावृत्ति हो गयी हो और कोई संस्मरण दुबारा आ गया हो, इसकी भी संभावना है, यद्यपि मैंने इससे बचने का यथाशक्ति प्रयत्न किया है। इसके साथ ही कितने ही महत्त्वपूर्ण संस्मरण छूट गये हैं या छोड़ दिये गये हैं, यह भी संभव है। इसमें कुछ स्मृति-दोष भी हो सकता है। इस लिए इन संस्मरणों को बिना पूर्वापर तारतम्य का विचार किए स्वतंत्र रूप से एक घूमते हुए कैलिडोस्कोप के चित्रों के समान ही ग्रहण करना चाहिए।

बहुत से मान्य पुरुषों के संस्मरण मैंने अलग से भी समय-समय पर लिखे हैं। उनमें दिये गये ब्यौरे से भी मैंने इस कृति को यथाशक्ति मुक्त रखने का प्रयत्न किया है। उन्हें अलग से पढ़कर ही उनका आनंद उठाना चाहिए।

मैं जानता हूँ कि गद्य-लेखन का न तो मुझे अभ्यास है न इसमें मैं किसी विशिष्टता का अनुभव ही करता हूँ जैसा कविता लिखते समय मुझे अक्सर होता है। ऐसी विशिष्टता मैंने अपने कितने ही मित्रों में पायी है, फिर भी मैंने इस लेखन का प्रारंभ क्यों किया यह प्रश्न सहज ही मन में उठता है। और भी एक बात है। बर्नार्ड शा से जब किसीने अपनी जीवनी लिखने का अनुरोध किया तो उन्होंने छूटते ही कहा—

'न तो मैंने किसी महिला के साथ बलात्कार किया है और न मैंने किसी की हत्या ही की है, मेरी जीवनी भला कौन पढ़ेगा ?' यह उत्तर विनोदपूर्ण भले ही हो परंतु इसमें सत्य का अंश भी है। शेली के **Our sweetest songs are those, that tell of saddest thought** के अनुसार यह भी कहा जा सकता है, **our best biogra-**

phies are those that tell of worst episodes। फिर मैंने अपनी इस नीरस कथा को लिखने का साहस ही क्यों किया जिसमें पाठकों को शायद ही कुछ चटपटी सामग्री मिल सके। अधिकांश कवियों ने स्वयं अपनी गाथा न लिखकर विद्वानों, समालोचकों और मनस्तत्त्व-विशारदो के लिए यह क्षेत्र छोड़ दिया है जहाँ उन लोगों की कल्पना को पूरी छूट मिल सके। उनके जीवन के संबंध में विद्वानों ने खूब माथापच्ची भी की है। यदि वे अपनी जीवनी स्पष्टतः लिख जाते तो यह ऊहापोह की स्थिति नहीं रहती। शेक्सपियर के विषय में मैथ्यू आर्नोल्ड का यह कथन सर्वविदित है —

Others abide our question but thou art free

ever outtopping Knowledge.

शेक्सपियर के जीवन के संबंध में सैकड़ों अटकलें उनकी कविता और विशेषतः उनके सॉनेटों के आधार पर लगाई गयी हैं। यदि वे प्रत्येक नाटक या सॉनेट के अपने जीवन से संदर्भित पूर्वपीठिका या मनःस्थिति का परिचय स्वयं दे जाते तो वे हजारों व्यक्ति क्या करते जो उनके संबंध में अपनी एक-से-एक अद्‌भुत सूझबूझ का परिचय देकर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त करते आ रहे हैं। कभी-कभी यह विचार भी आता है कि क्यों न मैं अटकलों के लिए पूरी गुंजाइश छोड़ दूँ ताकि भविष्य में लोगों की कल्पना को पूरी छूट मिल सके। पर क्या मेरे स्वयं के लिखने से ही वह पथ कुंठित हो जाएगा ! हाँ, इतना अवश्य है कि बहुत से व्यर्थ के विवाद नहीं उठाये जा सकेंगे।

मेरे प्रबंधकाव्य **अहल्या** की भाषा, अभिव्यक्ति, और शैली से मेरी ग़ज़लों की भाषा, अभिव्यक्ति और शैली के संबंध में भी भविष्य में गुलाब नाम के दो कवि होने की शंकाएं उठायी जा सकती थीं यदि छापाखाने की आज की-सी सुविधा न होती। कालिदास की चारों पुस्तकों में मुझे आंतरिक समानता मिलती है फिर भी कुछ विद्वानों ने चार कालिदासों की कल्पना कर डाली है। अतः काव्य की जितनी विपरीत विधाओं में मैंने रचना की है, उनके मूल में मेरे सतत प्रवहमान और विकासशील व्यक्तित्व की झलक इस आत्मकथा से मिल सके तो कम से कम वह तो इस आत्मकथा को लिखे जाने का एक औचित्य होगा ही। यद्यपि मेरे साहित्य पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में 6-7 पी. एच. डी. के प्रबंध लिखे जा चुके हैं पर गुलाब नामक भिन्न-भिन्न कवियों के होने और अन्य बहुत-सी कल्पनाओं का द्वार तो इस आत्मकथा द्वारा बंद हो ही जायगा।

दूसरी बात है कि काव्य की तरह मेरे गद्य-लेखन में चाहे विशिष्टता न हो परंतु यह विशिष्टता तो रहेगी ही कि वे घटनाएं केवल मेरे जीवन की हैं। अनंत सृष्टि-प्रवाह में उस विशिष्टि काल में उन विशिष्ट या अविशिष्ट घटनाओं और व्यक्तियों के संपर्क में आनेवाला मैं एक अकेला ही व्यक्ति हूँ। दाग़ का एक शेर याद आ रहा है —

यह क्या कहा कि दाग़ को पहचानते नहीं !
वह एक ही तो शख्स है, तुम जानते नहीं !

इस आत्मकथा को लिखने का एक कारण और भी है। जो व्यक्ति या जीवन की जो छोटी-मोटी घटनाएँ मेरी स्मृति में घुमड़ती रहती है उन्हें कागज पर उतार देने से मैं मानसिक रूप से बहुत कुछ हल्केपन का भी अनुभव करता हूँ। इसके अतिरिक्त मुझे तो उन्हें लिखते समय बीते हुए जीवन को फिर से जीने का सुख मिल ही रहा है। मेरी कविताएं मेरे अंतर्जगत् की तत्कालीन मनःस्थिति को प्रकट करती हैं। घटनाओं का विवरण उपलब्ध रहने से उन मनःस्थितियों के कारण का भी कुछ पता चल सकेगा।

सत्य, साहित्य की सब से प्रथम अनिवार्यता है। कल्पना का भी रस तभी आता है जब वह सत्य के जैसी लगे। सत्य सदा शिव होता है चाहे वह दुःखद और अप्रिय घटनाओं से ही क्यों न भरा हो। हिटलर को कितना भी बुरा भला कहें, उसके जीवन से भी यह लाभ तो मिलता ही है कि क्रोध और हिंसा किस प्रकार स्वयं अपने विनाश की भूमिका स्वयं तैयार कर लेती है। मात्र सत्य को अपना आधार बनाकर बिना नमक–मिर्च लगाये, मैं अपने जीवन की गाथा लिख रहा हूँ, अतः साहित्य की एक प्रारंभिक आवश्यकता, सत्य की पूर्ति तो मैं कर ही रहा हूँ। शिव और सुंदर की चिंता मैं क्यों करूँ ! यदि मेरे जीवन में वह होगा तो मेरे साहित्य में स्वतः आकर रहेगा। साहित्य के इन तीनों उपादानों, सत्यं, शिवं, सुंदरं की खोज में मैंने अपने जीवन के साठ से अधिक वर्ष बिता दिये हैं। थोड़ा विराम के रूप में ही यह सहज आत्मस्मरण करूँ तो क्या हानि है !

आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई
नतौ राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानौ है।

मेरा एक शेर है–

कैसे फिर से शुरू करें इसको
ज़िंदगी है, कोई किताब नहीं

आत्मकथा-लेखन द्वारा ज़िंदगी की किताब को फिर से शुरू करने का काल्पनिक उद्योग किया जा सकता है। मैं वही कर रहा हूँ।